(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का अध्यात्मिक मासिक-पत्र)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥

वार्षिक मूल्य २)   सम्पादक-श्रीराम शर्मा आचार्य।   एक अंक ≥)

वर्ष ७ | मथुरा, १ अप्रैल सन् १९४६ ई० | अंक ४

अपनी भूलों को स्वीकार कीजिए

जब मनुष्य कोई गलती कर बैठता है, तब उसे अपनी भूल का भय लगता है। वह सोचता है कि दोष को स्वीकार कर लेने पर मैं अपराधी समझा जाऊँगा, लोग मुझे बुरा भला कहेंगे और गलती का दंड भुगतना पड़ेगा। वह सोचता है कि इन सब झंझटों से बचने के लिए यह अच्छा है कि गलती को स्वीकार ही न करूँ, उसे छिपालूँ, या किसी दूसरे के सिर मढ़ दूँ।

इस विचार धारा से प्रेरित होकर काम करने वाले व्यक्ति भारी घाटे में रहते हैं। एक दोष को छिपा लेने से बार बार वैसा करने का साहस होता है और अनेक गलतियों को करने एवं छिपाने की आदत पड़ जाती है। दोषों के भार से अन्तःकरण दिन दिन मैला, भद्दा और दूषित होता जाता है और अन्ततः वह दोषों की, भूलों की, खानि बन जाता है। गलती करना उसके स्वभाव में शामिल हो जाता है।

भूल को स्वीकार करने में मनुष्य की महत्ता कम नहीं होती। वरन् उसके महान् आध्यात्मिक साहस का पता चलता है। गलती को मानना बहुत बड़ी बहादुरी है। जो लोग अपनी भूलको स्वीकार करते हैं और भविष्य में वैसा न करने की प्रतिज्ञा करते हैं वे क्रमशः सुधरते और आगे बढ़ते जाते हैं। गलती को मानना और उसे सुधारना यही आत्मोन्नति का सनमार्ग है।

पूजा का आत्मिक रहस्य।

(श्री० हरभगवान दास 'खुश्तर' मुलतान)

ईश्वर पूजा के स्थूल उपकरणों का सूक्ष्म आध्यात्मिक महत्व है। उस सूक्ष्म तथ्य को समझे बिना जो लोग केवल मात्र भौतिक कर्मकाण्डों के वाह्य आडम्बरों तक ही अपनी दृष्टि सीमित रखते हैं, वे पूजा के वास्तविक अर्थ को नहीं समझ पाते और न उसके सच्चे लाभ को ही प्राप्त कर पाते हैं।

सच्चा भगवद्‌भक्त-प्रभु भक्ति के निमित्त जिस समय आसन पर बैठता है तो वह अनुभव करता है कि वह एक चटाई के टुकड़े पर नहीं कर्तव्य की कठोर प्रतिज्ञा के ऊपर आरूढ़ है। इसी स्थान पर अविचल भाव से बैठकर उसे सत्य की दिव्य-ज्योति प्राप्त करती है। एक ओर से प्रलोभनों का ताना और दूसरी ओर से कठिनाइयों का बाना डालकर बुना हुआ यह सांसारिक घटना क्रम का आसन मेरे पैरों तले रहेगा मैं इसको नीचे दबाये रहूंगा, इसकी छाती पर बैठ कर जीवनोद्देश्य को प्राप्त करूँगा। परमात्मा की इच्छा और आज्ञा के अनुकूल जीवन का संचालन करूँगा।

भक्त-भगवान के आगे धूप जलाता है। मानों वह स्वीकार करता है कि आत्म दान करने से, त्याग की आहुति देने से, ही यशस्विनी दिव्य गंध उत्पन्न होती है। उस गंध का परमात्मा का मन्दिर संसार सुवासित होता है और प्रभु भी प्रसन्न होते हैं। जहां धूप जलती है वहां से दुर्गन्ध पूर्ण हानिकारक रोग कीट भाग जाते हैं। जहां आत्म त्याग की, परमार्थ के लिए बलिदान की भावना ज्वलित रहेगी वहां विषय विकारों के जहरीले कीटाणु ठहर न सकेंगे। मन्दिर सुवासित होगा और प्रभु प्रसन्न होंगे।

चन्दन घिसता है। ज्यों ज्यों घिसता है चन्दन का भार हलका होता जाता है, स्थूल दृष्टि वाले लोग समझते हैं। भगवद्‌भक्ति के मार्ग में चलते हुए चन्दन को घाटा हुआ वह घट गया। परन्तु भक्त को स्पष्ट दिखाई देता है कि चन्दन को लाभ ही हुआ, वह सूक्ष्म, सुवासित, पूज्य द्रव्य बन कर, भक्तों के ही नहीं भगवान के भी मस्तक पर जा विराजता है। बिना घिसे वह इस सौभाग्य से वंचित रह जाता। भक्त सोचता है मुझे भी घिसना होगा, पिसना होगा, लोक सेवा के लिए अपनी भौतिक संपदाओं का त्यागना होगा, ऐसा करके ही मैं सच्ची भक्ति कर सकता हूं।

प्रभु के संमुख वह दीप जलाता है। ज्ञान का दीपक भगवान की अखंडज्योति का निकट तम प्रतिनिधि है। ज्ञान का प्रकाश ही आत्मा को परमात्मा से मिलाता है। इस प्रकाश को जगाये बिना पूजा का कार्य पूरा हो नहीं सकता। भक्त दीपक जलाता है, मन्दिर में भी और हृदय मंदिर में भी। इस ज्ञान दीप के प्रकाश में वह भगवान के सच्चे स्वरूप को देखता है और उन्हें प्राप्त करने का सच्चा प्रयत्न करता है।

नैवेद्य, मधुर शर्करा सा बना हुआ, हृदय के अन्तस्तल से निकला हुआ निवेदन प्रभु के सामने उपस्थित किये बिना पूजा की विधि पूरी कैसे हो सकती है? हृदय मन्दिर में विराजमान परमात्मा के सामने अपने गुण दोषों का निवेदन करना अपनी भूलों को स्वीकार करना आवश्यक है। प्रभो, मुझे बल दीजिए, सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दीजिए, अन्धकार में से प्रकाश की ओर ले चलिए, असत् से सत् की ओर ले चलिए, मृत्यु से अमृत की ओर ले चलिए।" ऐसे मधुर भक्ति रस का मधुर शर्करा से बने हुए नैवेद्य निवेदन प्रभु के सामने वह उपस्थित करता है। ऐसी आध्यात्मिक पूजा से ही भगवान प्रसन्न होते हैं।

मथुरा १ अप्रेल सन् १९४६ ई०

देवताओं के अनुग्रह का मार्ग

भगवान् शंकराचार्य का कथन है :—

"दुर्लभं त्रयमेवैतद् देवानुग्रह हेतुकम्।
मनुष्यत्वं, मुमुक्षुत्वं महा पुरुष संश्रयः॥

अर्थात् संसार में तीन वस्तुऐं दुर्लभ हैं। और यही देवताओं के अनुग्रह का हेतु हैं। ये तीन वस्तु यह हैं :-(१) मनुष्यत्व, (२)मुमुक्षुत्व और (३)श्रेष्ठ पुरुषों की संगति।

देव पूजन में रुचि रखने वाले वे उपासक जो देवताओं की प्रसन्नता अनुग्रह, एवं कृपा की आकांक्षा करते हैं या उनको किसी प्रकार का वर-दान प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं उन्हें उपरोक्त श्लोक पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता हैं। इस श्लोक में प्रकट कर दिया गया है कि देवताओं का अनुग्रह होने से क्या वस्तु मिलती है या किस वस्तु से देवता अनुग्रहीत होते हैं।

साधारण वस्तुऐं सभी मनुष्य आम तौर से प्राप्त करते और उनका उपभोग करते हैं किन्तु ऐसी दुर्लभ वस्तुऐं जो आसानी से नहीं मिलती, मनुष्य देवताओं की कृपा से प्राप्त करने की इच्छा करता है। साथ ही देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उसे दुर्लभ वस्तुऐं भेंट करनी पड़ती हैं। जप, तप अनु-ष्ठान, बलिदान आदि द्वारा मनुष्य बहुत कष्ट सहकर सांसारिक प्रिय वस्तुओं को त्याग कर उपासना करता है तब देवताओं को प्रसन्न करता है। वह दोनों प्रकार की वस्तुऐं क्या हैं इसका भगवान् शंकराचार्य ने स्पष्ट शब्दों में विवेचन कर दिया है। वे कहते हैं कि देवताओं के अनुग्रह के तीन हेतु हैं (१) मनुष्यत्व (२) मुमुक्षुत्व (३) सत्संग। इन तीन तत्वों में ही देवता ओत प्रोत होरहे हैं। इनका प्राप्त होना और देवताओं का प्राप्त होना बिलकुल एक ही बात है। इन दोनों का इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि जहां एक होता है वहां दूसरा निश्चय ही उप-स्थित रहता है। जिस मनुष्य पर देवता प्रसन्न हों तो उसे संसार की दुर्लभ सम्पदाऐं (१) मनुष्यत्व (२) मुमुक्षुत्व (३) सत्संग,अवश्य प्राप्त होंगे अथवा यों कहिए कि जिसमें यदि तीनों बातें होंगी उस पर देवताओं की प्रसन्नता का प्रत्यक्ष दर्शन किया जा सकता है। अब देखना है कि यह तीनों तत्व क्या हैं :-

मनुष्यत्व—अपने तुच्छ स्वार्थों की अवहेलना करके सम्पूर्ण समाज के लाभ को ध्यान में रखकर विचार और कार्य करना मनुष्यत्व का लक्षण है। जिसे सम्पूर्ण समाज के लाभ हानि में अपना हित अनहित दिखाई पड़ता है, वह मनुष्य है। सत्य, प्रेम और न्याय को जो धर्म का आधार मानता है, संसार में सुख शान्तिकी वृद्धि करना जिसका जीवन लक्ष है, जो इस धर्म लक्ष के लिए जो जीवन भर तप करने का व्रत लेता है वह मनुष्य है। न किसी के हक को दबाना न किसी के हक को दबने देना मनुष्यता की निशानी है।

मुमुक्षुत्व—मोक्ष की स्वतन्त्रता की छुटकारे

की इच्छा करना मुमुक्षुत्व है । पापके, माया के, स्वार्थ के, वासना के बन्धन से छुडाकर आत्मा को सत्य के, पुण्य के, परमार्थ के स्वर्ग में ले जाने की तीव्र आकांक्षा रखने वाला मुमुक्षु है । अपने को महान्, उच्च, परम बनाना—आत्मा को परमात्मा में लीन कर देना है । विश्व के कण कण में परमात्मा की झांकी करना, जीव भाव को छोड़ कर परमात्म भाव की दृष्टि प्राप्त कर लेना परमात्मा को प्राप्त कर लेना है । मुमुक्षु व्यक्ति सदा इसी प्रकार की मुक्ति और परमात्म प्राप्ति के लिए निरन्तर तीव्र प्रयत्न करने वाले होते हैं ।

सत्संग—शरीर को श्रेष्ठ पुरुषों की मित्रता समीपता, दृष्टि, कृपा एवं रोशनी में रखना, मनको सत् उचित बातें सुनने, कहने और सोचने में लगाये रहना, आत्मा में सत्य प्राप्ति की उत्कट लालसा भरे रहना सत्संग है । जिन साधनों से आत्मा मन और शरीर सत् तत्व के समीप रहें वे सब सत्संग हैं ।

पाठको ! यदि आप अपने मन में देवताओं को आमंत्रित करना चाहते हो तो इन तीन कठिन वस्तुओं का ध्यान रखो । यही ब्रह्मा विष्णु महेश हैं । जो इन तीनों को प्राप्त कर लेता है उसे इसी जीवन में देव लोक का अक्षय आनन्द प्राप्त हो जाता है ।

———

दूर से भोंकने वाला कुत्ता काटता नहीं । जो अवसर आने से पहले बहुत बढ़ बढ़ाता है वह समय पर पुरुषार्थ नहीं दिखाता ।

× × ×

स्वर्ग, पृथ्वी और नरक में बहुत अन्तर नहीं है । जहां प्रेम और सचाई है वहां स्वर्ग है । जहां चतुरता और श्रम है वह पृथ्वी है । और जहां स्वार्थ एवं आलस्य है वहां प्रत्यक्ष नरक है ।

× × ×

धर्म का विश्वास ।

(श्री० स्वामी शिवानन्द जी)

———

"धर्म" वह विश्वास है जिसके द्वारा मनुष्य ईश्वर को जानता है और उनकी पूजा करता है । यह कलब (club) की मेज पर बैठ कर वाद-विवाद करने का विषय नहीं है । यह सत्य आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान और साधन है । यह मनुष्य की गंभीर आन्तरिक उत्कण्ठा (आकांक्षा) की सिद्धि है । तुम अपने जीवन को प्रति-क्षण इसी को साधना में व्यतीत करो । इस सिद्धि के बिना जीवन वास्तव में मृत्यु है । अपने विचारों को शोधो (उनका सार निकालो) । अपने प्रयोजनों को परखो (या उनकी परीक्षा करो) स्वार्थभाव का त्याग करो । इन्द्रिय विकारों को शांत करो । घमण्ड और अहंकार का नाश करो, प्रत्येक जीव से प्रेम करो तथा उसकी सेवा करो । अपने हृदय को शुद्ध करो । अपने मन के मल को साफ करो । सुनो सोचो, एकाग्रचित्त करो और ध्यान करो, इस प्रकार आत्म सिद्धि प्राप्त करो ।

हे सौम्य ! प्रिय अविनाशी आत्मा ! साहसी बनो, यद्यपि तुम बेकारी की अवस्था में भी हो, यद्यपि तुम्हारे पास भोजन के लिये कुछ भी नहीं हो, यद्यपि तुम्हारे शरीर पर केवल चिथड़े ही हों लेकिन तुम खुश रहो क्यों कि तुम्हारी मूल प्रकृति 'सत्-चित्-आनन्द' है । यह बाहरी जामा, यह नश्वर (मर्त्य) स्थूल कोष (अन्नमय कोष) अर्थात् शरीर, माया की मायावी सृष्टि है । इस मांस के पिंजरे से बाहर निकलो । तुम यह विनाशी (मर्त्य) शरीर नहीं हो । तुम अविनाशी अमृत आत्मा हो । तुम स्त्री पुरुष भेद से रहित आत्मा हो । तुम वह आत्मा हो जो कि तुम्हारे हृदय के मन्दिर में बसती है । उसी की तरह तुम काम करो । उसी की तरह संवेदन (अनुभव) करो । ——

सहज समाधि ।

महात्मा कवीर का वचन है—

साधो ! सहज समाधि भली ।
गुरू प्रताप भयो जा दिन से सुरति न अनत चली ॥
आँखन मूँदूँ कानन रूँदूँ, काया कष्ट न धारूँ ।
खुले नयन से हँस हँस देखूँ सुन्दर रूप निहारूँ ॥
कहूं सोई नाम, सुनूँ सोई सुमिरन, खाऊँ पीऊँ सोई पूजा
गृह उद्यान एक सम लेखूँ भाव मिटाऊँ दूजा ॥
जहां २ जाऊँ सोई परिकरमा जो कछु करूँ सो सेवा ।
जब सोऊँ तब करूँ दंडवत, पूजूं और न देवा ॥
शब्द निरंतर मनुआ राता, मलिन बासना त्यागी ।
बैठत उठत कबहूं ना बिसरै, ऐसी ताड़ी लागी ॥
कहैं कवीर यह उन मनि रहनी सोई प्रकट कर गाई ।
दुख सुख के एक परे परम सुख, तेहि सुख रहा समाई ॥

उपरोक्त पद में सद्गुरु कवीर ने सहज समाधि की स्थिति का स्पष्टीकरण किया है यह समाधि सहज है—सर्व सुलभ है—सर्व साधारण की साधना शक्ति के भीतर है, इसीलिए उसे 'सहज-समाधि' का नाम दिया गया है । हठ योग, राज योग, लय योग, नाद योग, विन्दु योग, आदि की साधना से कठिन है, उनका अभ्यास करते हुए समाधि की स्थिति तक पहुँचना असाधारण कष्ट साध्य है । चिरकालीन तपश्चर्या, षटकर्मों के श्रम साध्य साधन सब किसी के लिए सुलभ नहीं हैं । अनुभवी गुरु के सम्मुख रहकर विशेष सावधानी के साथ वे क्रियाएं साधनी पड़ती हैं फिर यदि उनका साधन खंडित हो जाय तो वे संकट भी सामने आ सकते हैं जो योग भ्रष्ट लोगों के सामने कभी कभी भयंकर रूप से आ खड़े होते हैं ।

कवीर जी सहज योग को प्रधानता देते हैं । सहज योग का तात्पर्य है—सिद्धान्त मय जीवन, कर्तव्य पूर्ण कार्यक्रम । इन्द्रिय भोगों, पाशविक वृत्तियों, एवं काम क्रोध लोभ मोह की तुच्छ इच्छाओं से प्रेरित होकर आमतौर से अपना कार्य-क्रम निर्धारित करते हैं ।

(१) संपत्ति संचय, (२) अहंकार की पूर्ति, (३) मनोरंजन, (४) काम सेवन, (५) रुचिकर आहार विहार, (६) ममत्व का पोषण, (७) परिग्रह की तृष्णा इन सात इच्छाओं की आधार धुरी पर घूमने वाले जीवन 'भोगी जीवन' हैं । जो इस छोटी सीमा में ही घिरे रहते हैं, इसी घेरे में अपने विचार और कार्यों को सीमित रखते हैं वे बन्धन ग्रस्त हैं, माया पाश में बँधे हुए हैं । योगी लोग इस क्षुद्र सीमा का उल्लंघन करके आगे बढ़ते हैं, वे इस बचपन से ऊँचे उठकर अध्यात्मिक यौवन की सीमा में पदार्पण करते हैं । भोग मयी क्षुद्रता को योगी लोग उल्लघन करते हैं इसलिए उन्हें जीवन मुक्त कहते हैं ।

योगियों का जीवन आदर्श मय होता है, अथवा यों कहना चाहिए कि जिनका जीवन सिद्धान्तमय-आदर्शमय है वे योगी हैं । जो बासना एवं तृष्णा से प्रेरणा ग्रहण नहीं करते, जिन्होंने तुच्छ स्वार्थों को महत्व देना छोड़ दिया है और आदर्शों की सिद्धान्तों की स्थिरता के ऊपर खड़े होकर जीवन की गति विधि को चलाते हैं वे योगी हैं । योग की आधार शिला यही है । अब आगे के साधन, अभ्यास, स्थूल, भिन्न भिन्न हैं उनकी कार्य प्रणाली प्रथक प्रथक है । इस पृथकता और भिन्नता के होते हुए भी मूल तथ्य सभी साधनाओं के अंतर्गत एक ही हैं ।

सहज योग, असंख्य प्रकार की योग साधनाओं में से एक है । इसकी विशेषता यह है कि साधारण रीति से सांसारिक कार्य करते हुए भी साधना क्रम चलता रहता है । इसी बात को यों भी कहना चाहिए कि दैनिक जीवन के समान सांसारिक काम-ही साधना मय बन जाते हैं । सहज योगी अपने

दिन भर के कार्यों को कर्तव्य, यज्ञ, धर्म, ईश्वरीय आज्ञा पालन की दृष्टि से करता है। भोजन करने में उसकी भावना रहती है कि प्रभु की एक पवित्र धरोहर शरीर को यथावत रखने के लिए भोजन किया जा रहा है। खाद्य पदार्थों का चुनाव करते समय शरीर की स्वस्थता उसका ध्येय रहता है, स्वादों के चटोरे पन के बारे में वह सोचता तक नहीं। कुटुम्ब का पालन पोषण करते समय वह परमात्मा की एक सुरम्य वाटिका का माली की भांति सिंचन, संवर्धन का ध्यान रखता है, कुटुम्बियों को अपनी सम्पत्ति नहीं मानता। जीविकोपार्जन को ईश्वर प्रदत्त आवश्यकताओं की पूर्ति का एक पुनीत साधन मात्र समझता है, अमीर बनने के लिए जैसे भी बने वैसे धन संग्रह करने की तृष्णा उसे नहीं होती। बात चीत करना, चलना फिरना, खाना, पीना, सोना, जागना, जीविकोपार्जन, प्रेम, द्वेष आदि सभी कार्यों को करने से पूर्व परमार्थ को, कर्तव्य को, धर्म को, प्रधानता देते हुए करने से वे समस्त साधारण काम काज यज्ञ रूप हो जाते हैं।

जब हर काम के मूल में कर्तव्य भाव को प्रधानता रहेगी तो उन कार्यों में पुण्य प्रमुख रहेगा। सद्बुद्धि से सद्भाव से किये हुए कार्यों द्वारा अपने आपको और दूसरों को सुख शान्ति ही प्राप्त होती है। ऐसे सत्कार्य मुक्ति प्रद होते हैं, बन्धन नहीं करते। सात्विकता सद्भावना और लोक सेवा की पवित्र आकांक्षा के साथ जीवन संचालन करने पर कुछ दिन में वह नीति एवं कार्य प्रणाली पूर्ण तया अभ्यस्त हो जाती है। और जो चीज अभ्यास में आ जाती है वह प्रिय लगने लगती है, उसमें रस आने लगता है। बुरे स्वाद की, खर्चीली, प्रत्यक्ष हानिकारक, दुष्प्राप्य, नशीली चीज़ें—मदिरा, अफीम, तम्बाकू आदि चीजें जब कुछ दिनके प्रयोग के बाद प्रिय लगने लगती हैं और उन्हें बहुत कष्ट उठाते हुए भी छोड़ते नहीं बनता। जब तामसी तत्व कालान्तर के अभ्यास से इतने प्राण प्रिय हो जाते हैं तो कोई कारण नहीं कि सात्विक तत्व उससे अधिक प्रिय न हो सकें।

सात्विक सिद्धान्तों को जीवन का आधार बना लेने से, उन्हीं के अनुसार विचार और कार्य करने से आत्मा को सत् तत्व में रमण करने का अभ्यास पड़ जाता है. यह अभ्यास जैसे जैसे परिपक्व होता जाता है वैसे वैसे सहज योग का रसास्वादन होने लगता है, उसमें आनन्द आने लगता है। जब अधिक दृढ़ता, श्रद्धा, विश्वास, उत्साह एवं साहस के साथ सत परायणता में, सिद्धान्त संचालित जीवन में परायण रहता है तो वह उसकी स्थायी वृत्ति बन जाती है, उसे उसी में तन्मयता रहती है एक दिव्य आवेश सा छाया रहता है, उसकी मस्ती, प्रसन्नता, संतुष्टता असाधारण होती है। इस स्थिति के सहज योग की समाधि या 'सहज समाधि' कहा जाता है।

कबीर ने उसी समाधि का उपरोक्त पद में उल्लेख किया है। वे कहते हैं—' हे साधुओ! सहज समाधि श्रेष्ठ है। जिस दिन से गुरु की कृपा हुई है यह स्थिति प्राप्त हुई है उस दिन से सुरति दूसरी जगह नहीं गई—चित्त डामा डोल नहीं हुआ। मैं कान मूंद कर, कान रूंध कर, कोई हठयोग की काया कष्टदायिनी साधना नहीं करता। मैं तो आंखें खोले रहता हूं और हँस हँस कर परमात्मा की पुनीत कृति का सुन्दर रूप देखता हूं। जो कहता हूं सो नाम जप है। जो सुनता हूं सो सुमिरन है, जो खाता पीता हूं सो पूजा है। घर और जंगल एक सा देखता हूं, और द्वैत का भाव मिटाता हूं। जहां जहां जाता हूँ. कोई परिक्रमा है और जो कछु करता हूं सो सेवा है। जब सोता हूँ तो वही मेरा दंडवत है। मैं एक को छोड़ कर अन्य देव को नहीं पुजता। मन मलिन वासना छोड़ कर निरन्तर शब्द में, अन्तकरण की ईश्वरीय वाणी

सुनने में रत रहता है। ऐसी तारी लगी है—निष्ठा जमी है कि उठते बैठते वह कभी नहीं बिसरतो। कबीर कहते हैं कि मेरी यह उनमनि-हर्ष शोक से रहित-स्थिति है जिसे प्रकट करके गाया है। दुख सुख से परे जो एक परम सुख है उसमें समा रहा हूं।"

यह सहज समाधि उन्हें प्राप्त होती है जो "शब्द में रत" रहते हैं। भोग एवं तृष्णा की क्षुद्र वृत्तियों का परित्याग करके जो अन्तःकरण में प्रतिक्षण ध्वनित होने वाले ईश्वरीय शब्दों को सुनते हैं—सत्य की दिशा में ही चलने की ओर दैवी संकेतों को देखते हैं—और उन्हीं को जीवन नीति बनाते हैं वे 'शब्द रत' सहज योगी उस परम आनन्द को सहज समाधि सुख को प्राप्त होते हैं। चूँकि उनका उद्देश्य ऊँचा रहता है, दैवी प्रेरणा पर निर्भरता रहती है इसलिए उनके समस्त कार्य-पुण्य रूप साधना रूप, बन जाते हैं। जैसे खांड़ से बना हुआ खिलौना आकृति में कैसे ही क्यों न हों, होंगे मीठे ही। इसी प्रकार सद्भावना और उद्देश्य परायणता के साथ किये हुए काम बाह्य आकृति में कैसे ही क्यों न दिखाई देते हों, होंगे वे यज्ञ रूप ही, पुण्य मय ही। सत्य परायण व्यक्तियों के सम्पूर्ण कार्य-छोटे से छोटे कार्य-यहां तक कि चलना, सोना, खाना, देखना तक ईश्वर आराधना बन जाते हैं।

स्वल्प प्रयास में समाधि का शाश्वत सुख उपलब्ध करने की इच्छा रखने वाले अध्यात्म मार्ग के पथिकों को चाहिए कि वे जीवन का दृष्टिकोण-उच्च उद्देश्यों पर अवलम्बित करें। दैनिक कार्यक्रम का सैद्धान्तिक दृष्टि से निर्णय करें। भोग से ऊँचे उठकर योग में आस्था आरोपण करें। इस दिशा में जो जितनी जितनी प्रगति करेगा उसे उतने ही अंशों में समाधि के लोकोत्तर सुख का रसास्वादन होता चलेगा।

सब कुछ भगवान की है।

(योगी अरविन्द घोष)

हमारे पास कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसे हम अपनी कह सकें, सब वस्तु भगवान की है, यह जीवन उसी के लिये है, हमारी वासना, हमारी कामना, हमारा मानवता हमारा आदर्श, उचित अनुचित, सम्भव असम्भव-जो कुछ ज्ञान है। उन सबको इसी भगवत ज्ञान के अनुगामी करना होगा। हृदय की समस्त आशा आकांक्षा एवं बुद्धि के सब विकारों को हटाना होगा धारणा करनी होगी कि यह जगत और हम अभिन्न हैं इस अनन्त कोटि ब्रह्मांड के भीतर सत्-चित आनन्द स्थिति है, यह सब उसी परब्रह्म के विकास हैं, वे ही इस विश्वपट पर ज्ञान, शक्ति और प्रेम की अनन्त लीला प्रगट करते और दिखलाते हैं। सभी प्रकार के भेद भावों को दूर प्रगट करते और दिखलाते हैं।

सभी प्रकार के भेदभावों को दूर करके उस विश्वशिल्पी के हाथ में अपने को खिलौने की तरह समर्पण करके निश्चिन्त होने से ही परम आनन्द मिल सकेगा। अहंकार इस उत्तम योग मार्ग का कंटक है। अहंकार दूर होने से भगवान की पूर्ण लीला हम लोगों के जीवन में क्रम में अभिनीत होगी, पूर्ण ज्ञान, प्रेम, आनन्द और शान्ति से हमारा यह जीवन पूर्ण रूप से विकसित हो उठेगा और तभी हम दिव्य जीवन का उपभोग कर सकेंगे, क्योंकि तब हमारा जीवन भगवत लीला का आधार स्वरूप बन जायगा। इस प्रकार आत्मोत्सर्ग यदि साधक अंशतः भी कर सकेंगे तो उनके कुसंस्कार की दुष्प्रवृत्तियां और बुरे कर्मों की ओर झुकाने वाली अन्यचेष्टा की वृत्तियां दूर हो जांयगी।

रोग निवारण के मानसिक प्रयोग !

(प्रो० रामचरणजी महेन्द्र एम०ए०डी०लिट्०)

मानसिक उपचारों द्वारा जो विचित्र चमत्कार प्राप्त होते हैं, उनका अनुभव पाठकों को निम्न-स्वर्ण-सूत्रों से उपलब्ध होगा। ये सूत्र बड़े २ अनुभवी मानस चिकित्सकों के जीवन के निचोड़ हैं। इनमें गहरा अनुभव एवं अनुसंधान निहित है। पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे इन प्रयोगों को स्वयं कर देखें।

अमृतधारा ध्यानः—

रोगी को प्रतिदिन सायं-प्रातः एकान्त स्थल अथवा किसी शान्त स्थल, मन्दिर इत्यादि में बैठकर एक घण्टे तक अपने इष्टदेव का या जिस पर उसका विशेष प्रेम, श्रद्धा, व विश्वास हो, उसका ध्यान नियत समय पर करना चाहिए। ध्यान के समय ऐसा देखने का प्रयत्न करे कि इष्टदेव स्वर्ण के कमंडल से अमृत की वर्षा हमारे मस्तिष्क पर कर रहे हैं जिसकी धारा उदर में प्रवेश कर रही है जिसकी प्रत्येक बूँद सम्पूर्ण रोगों को समूल नष्ट कर रही है तथा शरीर में अतुलबल, स्वास्थ्य, व उत्साह प्रदान कर रही है। इस अमृतधारा ध्यान से कुछ ही सप्ताहोंमें पुराने रोगों से छुटकारा मिल जायगा।

सिरदर्द मिटाने के प्रयोग :—

शान्त होकर अपनी मानसिक प्रवृत्तियों को पैरों पर एकाग्र करो। पैरों का ही ध्यान करो और इच्छा करो कि पैरों की तरफ ऊपर से नीचे की ओर रक्त संचार हो रहा है। इच्छा से रक्त की मस्तक में अधिकता मिटा कर नीचे की ओर उसका संचार होगा। इससे सिरदर्द मिट जाता है।

सिरदर्द मिटाने के लिए दूसरा प्रयोग कपाल के मध्य में ध्यान एकाग्र करने का है। अब इच्छा करो कि मस्तक की सारी शक्ति उसी मध्य बिन्दु में आ रही है। वह शक्ति तुम्हारे आज्ञानुसार कार्य कर रही है। रोग के द्रव्य हट रहे हैं। सरदर्द कम हो रहा है। प्रसन्नता एवं आनन्द आत्मा से प्रकाशित होने लगा है। इस ध्यान में मग्न होते ही सिरदर्द क़ाफ़ूर हो जायगा।

पाचन शक्ति सुधारः—

हमारे शरीर के जठर भाग में रक्त संचालन बराबर न होने से पाचन शक्ति विकृत हो जाती है। इसके लिए अपना मन पाचन क्रिया पर लगाओ और ध्यान करो कि जठर भाग में रक्त संचालन ठीक हो रहा है। हमें थोड़ी थोड़ी क्षुधा लगने लगी है। पाचन शक्ति तेजी से कार्य कर रही है। ऐसी भावना से विद्युत का सा प्रभाव पड़ेगा।

ठंड से बच सकते हैं :—

जाड़े के दिनों में जब ठंड लगती हो, सहन न हो सकती हो तो अपने शरीर के सब अंगों में रक्त गति बढ़ाने का प्रयत्न करो। मन को उत्तेजित करो। ध्यानकर प्रबल इच्छा करो कि सम्पूर्ण शरीर में रक्त तीव्र गति से सचरित हो रहा है। नस नस में तेजी से रक्त दौड़ रहा है। गर्मी आ रही है। चारों ओर गर्मी ही गर्मी भरी पड़ी है।

घबराहट से मुक्तिः—

जब अशान्ति, घबराहट या थकान मालूम हो तो दस बीस मिनट पूर्ण शान्त रहो। अपने मन के अन्तर्भाग में पूर्ण शान्ति स्थापित होने की इच्छा करो। शरीर के प्रत्येक भाग में शान्ति का ध्यान करो ! मुझमें क्रमशः भक्ति प्रेम और शान्ति का स्रोत खुल गया है। मेरे पवित्र हृदय में तो शान्ति की सरिता का प्रवाह बड़े वेग से बहने लगा है। मेरे शान्त और पवित्र हृदय को क्लेश एवं कष्ट कैसे

स्पर्श हो सकता है ? मैं पूर्ण तृप्त हो गया हूं । मेरे हृदय में अब कोई प्रचंड द्वन्द्व ऊधम नहीं मचा सकता। ऐसी भावना में ध्यान स्थिर करने से शरीर की घबराहट मिटकर ताजगी आती है । मन की अशान्ति दूर होकर एकाग्रता प्राप्त होती है।

जैसे चाहो वैसे बनो—

जब तुम अपने को जैसा प्रफुल्ल चाहते हो, वैसा न मालूम करते हो, तो अपने मन को बारबार सूचना देते रहो कि तुम जैसा चाहते हो, वैसा ही अनुभव भी कर रहे हो । जब कभी समय मिले इसी प्रकार की सूचना से मन को हरा भरा उत्साहित रक्खो ऐसा करने से प्रकृति तुमको इतनी सहायता देगी कि तुम्हारे शरीर में से सब सुस्ती दूर हो जावेगी। प्रकृति नित्य ही मनुष्य शरीर को नवीन और प्रफुल्ल बनाये रखने का प्रयत्न करती है । उत्तम सूचना से प्रकृति को इस काम में सहायता मिलती है।

जब तुम अपने आपको हारा थका कुछ हीन से मालूम पड़ते तो अपनी कल्पना के अनुसार अपने का सर्वोत्कृष्ट, समृद्धिशील सुन्दर और भव्य होने का चित्र अपने मानस जगत् में खींचो। ऐसा करने से तुम अपने मन में अधिक उत्तमता, योग्यता, और नीरोगता उत्पन्न करते हो । मनको परिपूर्ण और संतुष्ट करने पर तुमको अपना सब कुछ प्रिय और योग्य प्रतीत होता है।

सुन्दर कल्पना के चित्र—

जब तुम्हें आसपास का वातावरण बुरा मालूम हो तो अपनी कल्पना में एक प्रशान्त चित्र खींच कर मन को उसी का ध्यान करने दो । इससे शीघ्र ही मन शान्त और सुखी हो जायगा । जब तुम्हें ऐसा प्रतीत हो कि तुम्हारा शरीर कमज़ोर हो रहा है, या थक गया है तो तुम तुरन्त मन में बलवान् इच्छा को जाग्रत करो कि—"तुम बलवान हो, शक्ति के अवतार हो ! कार्यक्षम हो।" इस इच्छा को इस प्रकार करो कि शरीर के रोम रोम में, नस-नस में बल स्फूर्ति का संचार होते हुए जान पड़े। ऐसा करने से तुम घंटों बिना किसी उचाट के काम करते रहोगे ।

जब तुमको अपनी प्रकृति ठीक न जान पड़े तो कम भोजन करो और अधिक निद्रा लो। ऐसे समय अपने शरीर में जो नीरोगमय और बलवान् तत्व है, उसका ही ध्यान करके मन को शान्त रक्खो। सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व तो यह है कि हमारा आरोग्य तब तक ठीक नहीं रह सकता और सुधर सकता जब तक हम अपने मन को सुन्दर विचार, उच्च भावना और आरोग्यमय सूचनाओं से निरोग रक्खें। शरीर का आरोग्य हमारे मन पर ही निर्भर है—यह कदापि न भूलिये।

सांसारिक वैभव मनुष्य को अपनी दृष्टि में न तो ऊँचा उठा सकता है और न नीचा गिरा सकता है। महान् पुरुष स्वयं अपनी दृष्टि में बड़ा होता है, संसार चाहे उसकी महानता से परिचित हो या न हो । नीच मनुष्य स्वयं अपनी कमजोरी जानता है, अतः वह उस सतह तक कभी ऊँचा नहीं उठ सकता, जिस तक उसके प्रशंसक उसे उठाना चाहते हैं।

× × ×

मनुष्य अपनी इच्छा और रुचि के अनुकूल संसार को नहीं बना सकता अपितु सांसारिक परिस्थिति के अनुकूल अपने आपको ही बनाना होता है। संसार सार्वजनिक आवश्यकताओं के लिए बना है। व्यक्ति को अपनी आकांक्षाऐं सार्वजनिक आवश्यकता के अन्तर्भूत कर देनी चाहिए।

× × ×

सत्य का तथ्य।

———

मोटे तौर से जो बात जैसी सुनी है उसे वैसे ही कहना 'सत्य' कहा जाता है। किन्तु सत्य की यह परिभाषा बहुत ही अपूर्ण और असमाधानकारक है। सत्य एक अत्यन्त विस्तीर्ण और व्यापक तत्व है। वह सृष्टि निर्माण के आधार स्तंभों में सब से प्रधान है। सत्य भाषण उस महान सत्य का एक अत्यन्त छोटा अणु है, इतना छोटा जितना समुद्र के मुकाबिले में पानी की एक बूँद।

सत्य बोलना चाहिए, पर सत्य बोलने से पहले सत्य की व्यापकता और उसके तत्व ज्ञान को जान लेना चाहिए, क्योंकि देश काल और पात्र के भेद से बात को तोड़ मरोड़ कर या अलंकारिक भाषा में कहना पड़ता है। धर्म ग्रन्थों में मामूली से कर्मकाण्ड के फल बहुत ही बढ़ा चढ़ा कर लिखे गये हैं। जैसे गङ्गा स्नान से सात जन्मों के पाप नष्ट होना, व्रत उपवास रखने से स्वर्ग मिलना, गौदान से वैतरणी तर जाना मूर्ति पूजा से मुक्ति प्राप्त होना, यह सब बातें तत्व ज्ञान की दृष्टि से असत्य हैं क्योंकि इन कर्मकाण्डों से मन में पवित्रता का संचार होना और बुद्धि का धर्म की ओर झुकना तो समझ में आता है, पर यह समझ में नहीं आता कि इतनी सी मामूली क्रियाओं का इतना बड़ा फल कैसे हो सकता है? यदि होता तो योग यज्ञ और तप जैसे महान साधनों की क्या आवश्यकता रहती? टके सेर मुक्ति का बाजार गर्म रहता। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या वह धर्म ग्रन्थ झूठे हैं? क्या उन ग्रन्थों के रचियता महानुभावों ने असत्य भाषण किया है। नहीं उनके कथन में भी रत्ती भर झूंठ नहीं है और न उन्होंने किसी स्वार्थ बुद्धि से असत्य भाषण किया है। उन्होंने एक विशेष श्रेणी के अल्प बुद्धि के अविश्वासी, आलसी और लालची व्यक्तियों को, उनकी मनोभूमि परखते हुए एक खास तरीके से अलंकारिक भाषा में समझाया है। ऐसा करना अमुक श्रेणी के व्यक्तियों के लिए आवश्यक था, इसलिए धर्म ग्रन्थों का वह आदेश एक सीमा में सत्य ही है।

बच्चे के फोड़े पर मरहम पट्टी करते हुए डाक्टर उसे दिलासा देता है। बच्चे डरो मत, जरा भी तकलीफ न होगी। बच्चा उसकी बात पर विश्वास कर लेता है, किन्तु डाक्टर की बात झूंठी निकलती है। मरहम पट्टी के वक्त बच्चों को काफी तकलीफ होती है, वह सोचता है कि डाक्टर झूंठा है, उसने मेरे साथ असत्य भाषण किया। परन्तु असल में वह झूंठ बोलना नहीं है।

अध्यापक बच्चों को पाठ पढ़ाते हैं, गणित सिखाते हैं समझाने के लिए उन्हें ऐसे उदाहरण देने पड़ते हैं, जो अवास्तविक और असत्य होते हैं, फिर भी अध्यापक को झूंठा नहीं कहा जाता।

जिन्हें मानसिक रोग हो जाते हैं या भूत प्रेत लगने का बहम हो जाता है, उनका तांत्रिक या मनोवैज्ञानिक उपचार इस प्रकार करना पड़ता है जिससे पीड़ित का बहम निकल जाय। भूत लगने पर भुनहे ढङ्ग से उसे अच्छा किया जाता है. यदि वहम बता दिया जाय तो रोगी का मन न भरेगा और उसका कष्ट न मिटेगा। तान्त्रिक और मनोविज्ञान के उपचार में प्रायः नव्वे फीसदी झूंठ बोलकर रोगी को अच्छा करना पड़ता है, परन्तु वह सब झूंठ की श्रेणी में नहीं ठहराया जाता।

राजनीति में अनेक बार झूठ को सच सिद्ध किया जाता है। दुष्टों से अपना बचाव करने के लिए झूंठ बोला जा सकता है। दम्पत्ति अपने गुप्त सहवास को प्रकट नहीं करते। आर्थिक, व्यापारिक या अन्य ऐसे ही भेदों को प्रायः सच-सच नहीं बताया जाता है।

कई बार सत्य बोलना भी निषिद्ध होता है। काने को काना और लँगड़े को लँगड़ा कहकर संबोधन करना कोई सत्य भाषण थोड़े ही है। फौजी गुप्त

भेदों को प्रकट कर देने वाला अथवा दुश्मन को अपने देश की सच्ची सूचना देने वाला भी अपराधी समझा जाता है और कानून से उसे कठोर सजा मिलती है। भागी हुई गाय का पता कसाई को बता देना क्या सत्य भाषण हुआ?

इस प्रकार बोलने में ही सत्य को मर्यादित कर देना एक बहुत बड़ा भ्रम है, जिसमें अविवेकी व्यक्ति ही उलझे रह सकते हैं। सच तो यह है कि लोक कल्याण के लिए देश, काल और पात्र का ध्यान रखते हुए नग्न सत्य की अपेक्षा अलंकारिक भाषण से ही काम लेना पड़ता है। जिस वचन से दूसरों की भलाई होती हो सन्मार्ग के लिए प्रोत्साहन मिलता हो वह सत्य है। कई बार हीन चरित्र वालों की झूंठी प्रशंसा करने पर वे एक प्रकार की लोक लाज में बंध जाते हैं और स्वसंमोहन विद्या के अनुसार अपने को सचमुच प्रशंसनीय अनुभव करते हुए निश्चय पूर्वक प्रशंसा योग्य बन जाते हैं। ऐसा असत्य भाषण सत्य कहा जायगा। किसी व्यक्ति के दोषों को खोल खोलकर उससे कहा जाय तो वह अपने को निराश, पराजित और पतित अनुभव करता हुआ वैसा ही बन जाता है। ऐसा सत्य, असत्य से भी बढ़कर निन्दनीय है

भाषण सम्बन्ध सत्य की परिभाषा होनी चाहिए कि "जिससे लोक हित हो, वह सत्य और जिससे अहित हो वह असत्य है।" मित्र धर्म का विवेचन करती हुई रामायण उपदेश देती है कि—"गुण प्रकटै अवगुणहि दुरावा" यहां दुराव को, असत्य को धर्म माना गया है। आपका भाषण कितना सत्य है कितना असत्य, इसकी परीक्षा इस कसौटी पर कीजिये कि इससे संसार का कितना हित और कितना अहित होता है। सद्भावनाओं की उन्नति होती है या अवनति, सद्विचारों का विकास होता है या विनाश। पवित्र उद्देश के साथ निस्वार्थ भाव से परोपकार के लिए बोला हुआ असत्य भी सत्य है और बुरी नीयत से, स्वार्थ के वशीभूत होकर पर पीड़ा के लिए बोला गया सत्य भी असत्य है। इस मर्म को भली भांति समझकर गिरह बांध लेना चाहिए।

वास्तविक और व्यापक सत्य ऊँची वस्तु है वह भाषण का नहीं, वरन् पहिचानने का विषय है। समस्त तत्वज्ञानी उसी महान् तत्व की अपनी-अपनी दृष्टि के अनुसार व्याख्या कर रहे हैं। विश्व की रंगस्थली, उसमें नाचने वाली कटपुतलियां नचाने वाला तंत्री तत्व: क्या है, इसका उद्देश्य. और कार्य कारण क्या है, इस भूल भुलैयों के खेल का दरवाजा कहां है, यह बाजीगरी विद्या कहां से और क्योंकर संचालित होती है? इसका मर्म जानना सत्य की शोध है। ईश्वर, जीव प्रकृति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करके अपने को भ्रम बन्धनों से बचाते हुए परम पद प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ना मनुष्य जीवन का ध्रुव सत्य है। उसी सत्य को प्राप्त करने के लिए हमारा निरन्तर उद्योग होना चाहिए।

भगवान् वेद व्यास ने योगदर्शन २।३० का भाष्य करते हुए सत्य की विवेचना इस प्रकार की है :—

"परत्र स्वबोध संक्रान्तये वागुप्ता सा यदि न वञ्चिता भ्रान्ता व प्रतिपत्ति बन्ध्या वा भवेदिति। एथा सर्वभूतोपकारार्थ प्रवृत्ता, न भूतोपघाताय। यदि चैवमप्यभिधीयमाना भूतोपघात परैवस्यान्न सत्य भवेत् पापमेव भवेत।"

अर्थात्—'सत्य' वह है चाहे वह ठगी, भ्रम, प्रतिपत्ति बन्ध्या युक्त हो अथवा रहित, जो प्राणिमात्र के उपकारार्थ प्रयुक्त किया जाय। न कि किसी प्राणी के अनिष्ट के लिए। यदि सत्यता पूर्वक कही गई यथार्थ बात से प्राणियों का अहित होता है—तो वह 'सत्य' नहीं। प्रत्युत सत्याभास ही है।

और ऐसा सत्य भाषण असत्य में परिणत होकर पाप कारक बन जाता है। जैसे कसाई के यह पूछने पर कि—गाय इधर गई है ? यदि 'हां' में उत्तर दिया जाय तो यह सत्य प्रतीत होने पर भी सत्य नहीं, प्रत्युत प्राणी घातक है। अन्य उपाय न रहने पर विवेक पूर्वक सत्कार्य के लिए असत्य भाषण करना भी सत्य ही है।

महाभारत ने सत्य की मीमांसा इस प्रकार की है—

न तत्व वचन सत्यं, ना तत्व वचनं मृषा।
यद्भूत हित मत्यन्तम् तत्सत्यमिति कथ्यते॥"

अर्थात्—बात को ज्यों की त्यों कह देना सत्य नहीं है और न बात को ज्यों की त्यों न कह देना असत्य है। जिसमें प्राणियों का अधिक हित होता हो वही 'सत्य' है।

'सत्य' को वाणीका एक विशेषण बना देना उस महातत्व को अपमानित करना है। सत्य बोलना मामूली बात है जिसमें आवश्यकतानुसार हेर फेर भी किया जा सकता है। सत्य को ढूंढना, वास्तविकता का पता लगाना, और जो जा बात सच्ची प्रतीत हो उस पर प्राण देकर दृढ़ रहना, यह सत्य परायणता है। 'यम' की दूसरी सीढ़ी 'सत्य बोलना' नहीं सत्य परायण होना है। योग मार्ग के अभ्यासी को सत्यवादी होने की अपेक्षा सत्य परायण होने का; साहस, निर्भीकता, और ईमानदारी के साथ प्रयत्न करना चाहिए।

———

मनुष्य सहस्र बार नीचे गिर सकता है पर उसे सहस्रबार ही ऊँचे उठने का प्रयत्न करना चाहिए। जहां से वह गिरा था वहां से अधिक ऊँचा उठने का हर बार प्रयत्न होना चाहिए। पूर्णता प्राप्त करने का यही अव्यर्थ साधन है।

× × ×

सत्य ही शक्ति है।

जो मनुष्य बोलता कुछ है, विचारता कुछ और करता कुछ और ही है वह आगे चलकर बड़ा नीच विश्वासघाती और पर निन्दा में रत हो जायगा। वह समाज-कण्टक बन कर समस्त संसार के तिरस्कार का पात्र हो जायगा। सत्य पक्ष के ऊपर पहिले चाहे विपत्ति भी आजाय परन्तु अन्त में उसकी जीत हुए बिना नहीं रहती। सत्य का मार्ग अगम होने पर भी सुगम, सीधा और सरल होता है। सत्य के ही बल पर संसार स्थित है। इसके विपरीत झूठेपन का मार्ग क्षणिक मोहकता के कारण पहिले यद्यपि सरल मालूम होता हो परन्तु अन्त में दूध का दूध और पानी का पानी होता है, हर एक मनुष्य इस बात को जानता है कि झूठ सदा अन्त तक नहीं छिप सकता। तब फिर भंडा फूट जाने पर बड़ी विपन्न दशा आ पहुंचती है। इतना ही नहीं झूठे पन का मार्ग सभी तरह से नाशकारी है। एक झूठ बात कह कर उसका निर्वाह करने के लिए दूसरी झूठ बात बनानी पड़ती है। और दूसरी के लिए तीसरी इस प्रकार सदा झूठी बातें करने की ही आवश्यकता होती जाती है।

अन्त में किसी न किसी तरह निशाना चूक जाने पर मनुष्य ऐसा बेढब फँसता है कि फिर उस जाल से जन्म भर निकलना असम्भव हो जाता है। असत्य प्रिय मनुष्य अपने आचरण से सदा विचार हीनता, मन-दुर्बलता और कायरता प्रकट किया करता है।

———

आशावादी मनुष्यों को प्रायः सफलता ही मिलती है क्यों कि वे नाना प्रकार के सन्देहों और संकल्प विकल्पों में अपनी शक्ति नष्ट होने से बचा लेते हैं। × × ×

पेट ठीक रखने की दो—क्रियाएं।

पेट को ठीक रखना एक ऐसा सुनिश्चित उपाय है जिससे प्रायः सभी रोगों से बचा जा सकता है। (१) कड़ी भूख लगने पर खाना। (२) खूब चबा चबा कर खाना। (३) पेट को थोड़ा खाली रहने देना। (४) सुपाच्य सात्विक पदार्थ खाना और (५) भोजन में अमृत की भावना करके खाना। इन पांच नियमों का जो सावधानी के साथ अनुसरण करता है उसको कब्ज की शिकायत करने का अवसर नहीं आता।

पेट की कमजोरी दूर करके पाचन यंत्रों को सबल बनाने तथा आमाशय और आंतों की खराबियों को दूर करने के लिए योगभ्यास के अन्तर्गत 'उड्डियानबंध' और नौलि कर्म दो साधनाऐं ऐसी हैं जिनसे पेट का बड़ा हित होता है। उन दोनों की विधि नीचे बताई जाती है।

उड्डियान बंध—

प्रातःकाल सुखासन या पद्मासन से बैठ कर दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रक्खो सिर को जरा नीचे की तरफ झुकाओ. रीढ़ (मेरुदड) जरा झुकने दो। फिर आहिस्ता आहिस्ता स्वांस नासिका द्वारा बाहर निकाल डालो, और साथ ही उदर को अन्दर खींचो और बाहर निकालो, इस प्रकार चार बार करो, पुनः श्वास लेकर निकाल दो और फिर उसी प्रकार करो, प्रथम दिन प्रातःकाल ५ या ६ बार करो और सायंकाल भी यानी प्रातःकाल के भोजन के ५ घन्टे पश्चात् ५ या ६ बार करो, इसको उड्डियान बंध कहते हैं। पेट जितना हो सके अन्दर जाने दो और जल्दी से बाहर निकालदो, ध्यान रहे ! जब कि पेट को अन्दर लेने तथा बाहर निकालने का काम करते रहो तब तक श्वांसों को बन्द रखो यानी निकाले हुए ही रहना चाहिये। यदि रोग पुराना और शरीर स्थूल (मोटा) हो तो उक्त प्रमाण से अधिक यानी ८ या ६ बार करो और धीरे धीरे बारह बार करना विशेष लाभप्रद होगा।

ऐसा अभ्यास प्रति दिन ७ दिन तक दो दो बार अधिक बढ़ाते जाओ तीन या चार दिन के बाद बहुत ही आराम मालूम होने लगेगा। दस्त साफ आवेगा, पेट की शिकायतें दूर होती जायगी, नींद अच्छी आवेगी, शरीर हल्का व चित्त प्रसन्न रह कर स्फुर्ती दीखने लगेगी, परन्तु ऐसे समय में खाने पर पूर्ण ध्यान रखना चाहिये भारी खुराक बिलकुल नहीं लेनी चाहिये।

नौली कर्म—

जब उड्डियान अच्छी तरह होकर खाद्य पदार्थ को भली प्रकार मिश्रीत होकर रस बनने लगे।

प्रायः १५ दिन बाद सिद्धासन या पद्मासन से बैठकर घुटनों पर दोनों हाथ रखो और सिर को नीचे झुकाकर रीढ़ को भी झुकाओ, फिर श्वास संपूर्ण रूप से बाहर निकाल कर पेट को अन्दर की ओर खींचो जब पेट अच्छी तरह अन्दर चला जाय तब केवल सिर्फ दोनों नलों को युक्ती से ऊपर को उठाओ (पेट नहीं उठाना सिर्फ नले ही उठाना चाहिये) और उठने के बाद दायें से बायें तरफ और बाईं से दाईं तरफ फिराओ, इस प्रकार तीन मिनट तक करो बीच बीच में आराम लेते जाओ। यह कार्य प्रातःकाल (सुबह) उठने के साथ ही करना चाहिये, फिर दस मिनट बाद शौच को जाओ।

इस प्रकार नित्य करने से उदर के सर्व रोग नष्ट होकर पाचन शक्ति बढ़ती है और पेट के ठीक रहने से अन्य रोगों से बचाव होता रहता है।

———

दाम्पत्ति प्रेम का संतति पर प्रभाव ।

पति पत्नी के आपसी घनिष्ट एवं सच्चे प्रेम का बहुत ही गंभीर प्रभाव बालकों के स्वास्थ्य, वर्ण एवं संस्कारों पर होता है। जो स्त्री पुरुष हृदय से एक दूसरे को प्रेम करते हैं और एक दूसरे की सुविधाओं का ध्यान रखते हैं उनके अन्तःकरण आपस में पूरी तरह मिल जाते हैं। जिस प्रकार उत्तम खाद और उत्तम पानी के मिलने से सुन्दर हरे भरे पौदे उगते हैं और उनका भीतरी बाहरी सुन्दरता देखने ही योग्य होती है, उसी प्रकार पति और पत्नी का निष्कपट प्रेम सम्बन्ध होने पर बालकों का शरीर और मन परिपुष्ट हो जाता है।

डाक्टर जान कावेन के अनुभव में एक ऐसा बालक आया जो बहुत छोटी उम्र का होने पर भी मशीनों के काम में बहुत जानकारी और दिलचस्पी रखता था। उन्होंने उसके पिता से पूछ कर मालूम किया कि जिन दिनों वह बालक अपनी माता के पेट में था तब उसका पिता इञ्जनियरिंग सम्बन्धी एक कार्य में बड़ी तत्परता से लगा हुआ था, वह जब काम पर से लौट कर आता तो अपनी गर्भिणी स्त्री से भी उसी सम्बन्ध की वार्तालाप करता, तदनुसार बालक की प्रवृत्ति भी उसी ओर झुकी हुई थी।

डाक्टर फाउलर के कुछ अनुभव बहुत ही महत्वपूर्ण हैं, वे अपनी पुस्तक में लिखते हैं—मैं एक दिन घूमने जा रहा था कि रास्ते में दो बहुत ही तन्दुरुस्त और सुन्दर बालकों को देखा। मेरी इच्छा उनके सम्बन्ध में अधिक जानने की हुई। तलाश करता हुआ उनके घर पहुंचा और उनके माता पिता से उत्तम सन्तान प्राप्त करने के कारणों के सम्बन्ध में पूछ ताछ की। मालूम हुआ कि वे इस सम्बन्ध में किसी विशेष नियम का पालन नहीं करते केवल उन दाम्पत्ति में अत्यधिक प्रेम है। दोनों ने आपस में कभी किसी को कटु शब्द नहीं कहा और न कोई किसी से नाराज हुआ। इसी गुण के कारण उन्हें उत्तम सन्तानें प्राप्त हुई।

इन्हीं डाक्टर साहब के इलाज में एक ऐसा लड़का आया जो बहुत ही कमजोर और बुद्धिहीन था। उसकी माता यद्यपि बहुत तन्दुरुस्त और चलते पुर्जा थी, फिर भी ऐसी सन्तान क्यों उत्पन्न हुई, इससे डाक्टर साहब को आश्चर्य हुआ, उन्होंने उस स्त्री से पूछ ताछ की तो मालूम हुआ कि दाम्पत्ति प्रेम के अभाव के कारण ऐसी सन्तान हुई, इस स्त्री के साथ उसके पति की सदा अनमन बनी रहती थी।

इसी तरह की एक और कन्या को उन्होंने देखा जो बड़ी ही डरपोक और रोनी सूरत की थी। जवान होने पर भी उसे सांसारिक कार्यों की ओर बिल्कुल रुचि न थी। सदा एकान्त में रहती और बाइबिल पढ़ा करती, कोई जरा भी कुछ कह देता तो आंसू नाक पर आ जाते। पूछने पर उसकी माता ने बताया कि जब यह लड़की गर्भ में थी तो उसका पति सदा उससे झगड़ता और रूठता रहता था। माता दुखी होकर एकान्त में पड़ी रहती और अपने दुखी चित्त को धार्मिक गाथाएँ पढ़ कर शान्त करती रहती थी। यही सब गुण उस कन्या में भी आगये।

डाक्टर डे० का यह मत है कि माता पिता के आपसी प्रेम में जितनी अधिक घनिष्टता होगी, बालक उतना ही अधिक उत्साही, स्फूर्तिवान और तेजस्वी होगा। कारण यह है कि गर्भ पलता तो माता के पेट में है, परन्तु उसका मूल बीज पिता के शरीर से आता है, इसलिए माता के द्वारा प्राप्त होने वाली वस्तुऐं ही उसके लिए पर्याप्त नहीं हैं। मनुष्य स्थूल ही नहीं है। उसका जितना भाग स्थूल दिखाई पड़ता है, उसकी सूक्ष्मता उससे

हजार गुनी अधिक हैं। मनुष्य की गुप्त शक्तियां सूक्ष्म लाक से प्राप्त होती हैं। चूंकि बालक माता के बन्धन में होता है, इसलिये वह अपने योग्य सूक्ष्म तत्व उसी से प्राप्त कर सकता है, जिससे माता पिता की विद्युत शक्ति आकर्षण रखती हो। यों तो माता के पास अन्य स्त्री-पुरुष भी रहते हैं, परन्तु आकर्षण केवल आन्तरिक प्रेम के द्वारा ही होता है! स्त्री का यदि अपने पति से पूर्ण प्रेम है, तो अपनी आकर्षण शक्ति द्वारा पति के सूक्ष्म तत्वों को खींच कर उदरस्थ बालक को देती रहेगी। इसी प्रकार यदि पति का पत्नी से अधिक स्नेह है, तो वह अपने तत्वों को उसकी ओर फेंकता रहेगा। इस प्रकार के सूक्ष्म आकर्षण द्वारा बालक उन शारीरिक और मानसिक वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है, जिसकी उसे आवश्यकता है। पिता द्वारा यह गुण इसलिए आसानी से प्राप्त हो सकते हैं कि गर्भ अपने मूल स्थान की वस्तुओं का अभ्यासी होता है। शुक्र कीट जो अब गर्भ का रूप धारण किये हुये है, अपने उद्गम स्थान को भूल नहीं गया है। जिस प्रकार बछड़ा अपनी माता का दूध आसानी से पी लेता है और माता उसके लिए अधिक दूध निकाल देती है, इसी प्रकार पिता के तत्वों से ही गर्भ का अधिक मात्रा में मानसिक पोषण होना सम्भव है।

स्त्री पुरुष में प्रेम की घनिष्टता होने पर ही यह यह सूक्ष्म वस्तुएं प्राप्त हो सकती हैं। यदि ऐसा न हो और इसके विपरीत दम्पति में अनबन या उदासीनता रहती हो, तो गर्भ का पूरा पोषण नहीं हो पाता और जिस प्रकार भोजन मिलने पर पानी न मिलने या पानी मिलने पर भोजन न मिलने से अपूर्णता रहती है—पेट नहीं भरता और संतोष नहीं होता, उसी प्रकार पिता के तत्वों के अभाव में बालक का शारीरिक और मानसिक संगठन अपूर्ण रह जाता है। चाहे उसके शारीरिक अंग देखने में पूरे भले ही प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तव में उसके अन्दर बहुत सी दुखदायी त्रुटियां रह जाती है, जो कि बड़े होने पर प्रकट होती हैं।

डाक्टर वेवर कहते हैं कि—"स्त्री, पुरुषों का उदासीनता या उपेक्षा पूर्वक जीवन बिताना सब दृष्टिकोणों से हानिकर है, उससे तो यही अच्छा है कि वे विवाह ही न करें। स्त्री, पुरुष आपस में अधिकाधिक प्रेम बढ़ा कर केवल अपने शरीरों की उन्नति करते और जीवन को सुखमय ही नहीं बनाते हैं, वरन् उत्तम संतान भी उत्पन्न करते हैं। मैंने तीन सौसे अधिक परिवारोंकी गुप्त जांचकी है और इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि प्रेमी दम्पत्तियों ने ही उत्तम शरीर और बुद्धि वाली संतानें उत्पन्न की हैं। चालीस परिवार मेरी जांच में ऐसे आये, जिनमें स्त्री, पुरुषों में अनबन रहा करती थी। इनके तीन चौथाई बच्चे बड़े बेढंगे, बेहूदे, अंग-भंग, दुर्बल और मूर्ख थे। जो बच्चे अच्छे थे, वे भी प्रेमी दम्पत्तियों की सन्तान की अपेक्षा कहीं नीचे दर्जे के थे।"

निस्संदेह बालकों पर माता पिता के सच्चे प्रेम का असाधारण रीति से उत्तम प्रभाव पड़ता है। जिन्हें स्वस्थ, सुन्दर, दीर्घजीवी, तेजस्वी और सद्गुणी बालकों की इच्छा हो उन्हें दाम्पत्ति प्रेम की घनिष्ठता एवं पवित्रता अधिकाधिक मजबूत बनानी चाहिए।

स्वार्थ, अहंकार और लापरवाही की मात्रा बढ़जाना यही किसी व्यक्ति के पतन का कारण होना है।

× × ×

आत्मोन्नति का सर्वोपरि नियम यह है कि उचित को ग्रहण करने और अनुचित का त्याग करने के लिए सदा प्रस्तुत रहा जाय। जो पक्षपात की हठ न करके सदा सत्य की तलाश में रहता है वही उन्नति के शिखिर पर चढ़ सकता है।

× × ×

आत्म संयम का आनन्द।

(श्री० देशराज जी ऋषि, रुड़की)

अनियंत्रित असीम इच्छाओं के चंगुल में फँस जाने से मनुष्य जीवन की सुख शांति नष्ट भ्रष्ट हो जाती है। क्यों कि जितनी इच्छाएं मनमें उठती हैं, उनका पूरा असंभव है। उनकी जितनी ही पूर्ति की जाती है उतना ही वे और भी अधिक भड़कती हैं। इस आपाधापी के कारण चिन्ता में सदा क्लेश, अशान्ति एवं उद्विग्नता बनी रहती है।

जिन्हें शान्तिमय जीवन बिताने की इच्छा है उनके लिए यह आवश्यक है कि असीम कामना एवं वासनाओं पर निमंत्रण करने का अभ्यास करें। सांसारिक और आत्मिक विकाश के लिए उचित आवश्यक एवं धर्मयुक्त आवश्यकताओं की इच्छा करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त तामसिक एवं राजसिक, क्षणिक आकर्षक अन्त में दुखदायी तृष्णाओं को मनः प्रदेश में से बहिष्कृत करने का निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए। तभी जीवन में स्थायी शान्ति का होना संभव है।

मनुष्येतर योनियों में विषय-सुख की कमी नहीं है। मक्खी को देखिये उसे मनमाने भोज्य पदार्थों का स्वाद लेने की जितनी स्वतंत्रता है उतनी मनुष्य को कहां? कुत्ते जिस स्वतंत्रता से काम सेवन करते हैं उतना अवसर मनुष्य को नहीं है। अन्य योनियों में विषयों का आस्वादन करने की पर्याप्त सुविधा है। मनुष्य जीवन इससे ऊँचा है। उसमें बहुत बड़े आनन्द का समावेश है। जिसे परमानन्द कहते हैं। इस परमानन्द को प्राप्त करना ही मनुष्य जीवन का वास्तविक उद्देश्य है।

रामायण ने इसे और भी स्पष्ट कर दिया है।

नर तन पाय विषय मन देहीं।
पलट सुधा ते शठ विष लेहीं॥
एहि तन कर फल विषय न भाई।
स्वर्ग हु अल्प अन्त दुख दाई॥

विषय विकारों में जो सुख दिखाई पड़ता है वह भ्रम मात्र है। वास्तव में "काम अछत सुख सपनेहु नाहीं।" इनके सेवन से शारीरिक और मानसिक अधः पतन ही होता है। उस क्षणिक सुख भास के बदले में अमित हानि उठानी पड़ती है।

परमानन्द की प्राप्ति के लिए आत्म संयम सबसे पहली साधना है। काम, क्रोध लोभ, मोह के तूफान के कारण मनः क्षेत्र में भारी उथल पुथल मची रहती है। इस अशान्त वातावरण में आत्मा अपने स्वरूप में स्थित नहीं हो पाती। हर घड़ी एक लालसा, चिन्ता, आशंका एवं उद्विग्नता बनी रहती है, जिसके कारण हर घड़ी शारीरिक और मानसिक शक्तियों का क्षरण होता रहता है। ऐसे व्यक्तियों का आत्म विकाश पूरी तरह नहीं हो पाता। आत्मोन्नति के मार्ग पर तो वे ही व्यक्ति चल सकते हैं जिनके मस्तिष्क में शान्ति और स्थिरता है। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए आत्म संयम के लिए अनावश्यक तृष्णा एवं वासनाओं से बचने के लिए अध्यात्म मार्ग के साधकों को पूरा पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

शारीरिक आत्म संयम के लिए ब्रह्मचर्य और उपवास की आवश्यकता है। जो गृहस्थ-वासना की दृष्टि से नहीं वरन आवश्यक कर्तव्यों की पूर्ति के लिए काम सेवन करता है वह गृहस्थ होते हुए भी ब्रह्मचारी है। इसी प्रकार जो स्वाद का, चटोरेपन का, बहिष्कार करके शरीर रक्षा की दृष्टि से, भोजन ग्रहण करता है वह उपविश्य है। इन दोनों व्रतों को धारण करने से मनुष्य कुछ ही समय में आत्म संयमी बन जाता है। और आत्मिक स्थिरता एवं शान्तिका परम सात्विक आनन्द प्राप्त होने लगते हैं।

आसन से स्वास्थ्य-लाभ।

(ले०—वैद्यभूषण श्री० श्रीनिवास जी शर्मा)

संसार में मनुष्यों के लिये शरीर तथा स्वास्थ्य का सुख, सबसे पहिला सुख है। विद्या, धन प्रतिष्ठा, सन्तान तथा घर इत्यादि अनेकों पदार्थ मनुष्यों को मिले हुए हैं परन्तु यदि मनुष्य रोगी है तथा उसे शरीर का कोई सुख नहीं तो यह सब व्यर्थ है। इसे सब मानते है परन्तु इतने पर भी वह प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करते है तथा स्वयं ही रोग ग्रसित हाते हैं।

औषधियों डाक्टरों वैद्यों तथा दवाखानों के देश में प्रचार करने से रोग दूर नहीं होते। जितना धन इनके प्रचारमे व्यय किया जाता है, यदि इससे आधा भी स्वास्थ्य प्रचार में व्यय किया जाय तो आज ही रोग देश से भग जावें। यदि आप अपने जीवन को नियमित बनालें तो रोग आपके पास भी न फटके। रोग केवल आपके दुश्चिरित्रों का परिणाम है। आप जिह्वा के स्वाद में ऐसे ऐसे पदार्थ खा जाते है जो आपके पेट का सत्यानाश कर देते हैं। आप स्वयं अनुभव करतेहैं कि रोग प्राय: पेटके दर्द तथा अजीर्ण से उत्पन्न होते हैं इनको भगाने का सिद्ध उपचार आसन करना है। आप आसन के लाभसे भी परिचित हैं परन्तु फिर भी वह विष मिश्रित औषधियां सेवन करते है जो तत्काल लाभतो दर्शाती हैं, परन्तु शरीर के अन्य भागों को हानिप्रद सिद्ध होती हैं। उतनी शीघ्रता से दवा लाभ नहीं करती, जितनी शीघ्रता से आसनसे लाभ होताहै यह केवल कथनमात्र ही नहीं, पाठकगण अनुभव करें। रोगतो ठीक हो ही जायगा, साथ ही स्वास्थ्यभी सदैव ठीक रहेगा। आसन करने की प्रवृत्ति उत्पन्न कीजिये-तथा हृष्ट पुष्ट बनिये। जो सहस्रों रुपये व्यय करने से भी आप स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकते, यह नियमित रूपसे आसनों के द्वारा बिना खर्च प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ कुछ उपाय लिखते हैं, आशा है पाठक इससे लाभ उठायेंगे।

१—पेट को आगे की ओर जितना फूल सके फुलायें, फिर सकोड़ें। नाभि को रीढ़की हड्डी के साथ लगायें और दोनों हाथों को पेट पर रक्खें, आप पीछे रहें तथा अँगुलियाँ सामने की ओर रक्खें अब पेटको फिर फुलायें तथा बायें हाथ से दायें, दायें से पीछे की ओर दबाव डालें। इस प्रकार नियम पूर्वक करने से पेट के भीतर की गन्दी वायु निकलती रहेगी, पेट के दर्द को इस रीति से शीघ्र लाभ होगा।

२—Atleution खड़े होकर श्वास को बिल्कुल बाहर निकाल कर पसली के दोनों पार्श्वों को भीतर खींचने का प्रयत्न करें। नाभिका भाग ऊपरकी ओर उभरा रहे, दोनों हाथों को घुटनों पर रखलें तथा इस रीतिसे झुक कर कुछ बार श्वासको भीतर बाहर करें।

३—आपने कुत्ते तथा बिल्ली को अँगड़ाई लेते देखा होगा, ठीक उसी प्रकार होजाइये, हाथोंको सीधा आगे फैलाइये, पृथ्वी पर ठोड़ी लगाइये तथा टांगें लम्बी करके घुटने अलग २ रखिये, इस प्रकार हाथ २-३ बार ऊपर को करके फिर अँगूठों को पकड़िये तथा कमर जितनी झुक सके झुकाइये।

४—पृथ्वी पर बैठ कर पैरों को आगे फैलाइये फिर दोनों हाथों से दोनों पांव के अँगूठों को पकड़ लीजिये तथा सिरको दोनों अँगूठों के बीच में रखिये, पेटको भीतर की ओर खींचिये, ऊपर को ओर उभार बिल्कुल न हो इस दशा में कुछ देर तक बैठे रहिये। आरम्भ में तो यह आसन कठिन प्रतीत होगा परन्तु धीरे-धीरे सरल हो जायगा।

उपरोक्त आसन पेट के समस्त रोगों को दूर करने वाले हैं। प्रथम तो कम से कम १ सप्ताह तक केवल पांच मिनट तक कीजिये फिर धीरे २ बढ़ाते चलें तथा आध घण्टे तक करें। इससे आंतोंके समस्त विकार दूर होकर पाचनशक्ति तीव्र होजायगी, भूख लगेगी परन्तु याद रक्खें जब भूख लगे तो दूध, घी अथवा फल खायें मसालेदार पदार्थ न खायें नहीं तो हानि होगी। यदि सम्भव हो तो भोजन के उपरान्त छाछ अवश्य पी लिया करें। ——

मिथ्या व्यवहार की मूर्खता।

(श्री पं० ललिताप्रसाद मिश्र, मंडला)

मिथ्या आहार वे हैं जिनकी आवश्यकता शारीरिक स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन के लिए नहीं होते हुए भी मनुष्य जिह्वा के स्वाद के प्रलोभन में आकर व्यवहार करता है। या यों कहिये कि वास्तविक क्षुधा और शारीरिक स्वास्थ्य के स्वाद से जिस भोजन का निषेध है वह आहार मिथ्या है। इसी प्रकार जिस व्यवहार की आवश्यकता सांसारिक जीवन में नहीं है उस का बर्ताव करना मिथ्या व्यवहार है। ये मिथ्या व्यवहार हैं- असत्य भाषण, छल-कपट, बाह्याडम्बर और दगाबाजी इत्यादि।

जिस प्रकार बिना पूर्ण भूख लगे और शारीरिक स्वास्थ्य का ध्यान न रखते हुए किया हुआ भोजन शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न कर देता है जो अन्त में दुःसाध्य और असाध्य होकर शरीर को बलहीन एवं नष्ट कर डालते हैं, उसी प्रकार जिन व्यवहारों के बिना ही संसारिक कार्य सुगमता और स्थायी सुचारुरूप से चलते हैं उनको कार्य रूप में लाने से मानसिक रोग पैदा हो जाते हैं। वे मानसिक प्रवृत्तियों को अधः पतन की ओर अग्रसर करके दुःसाध्य और असाध्य बन जाते हैं।

छल, कपट, दंभ, धूर्तता, मायाचार, धोखेबाजी एवं असत्यता युक्त व्यवहार से कुछ लोग क्षणिक सफलता प्राप्त कर लेते है पर थोड़े ही समय में उस मायाचार का भण्डा फूट जाता है और लोगों पर से उसका सारा विश्वास उठ जाता है। ऐसे अविश्वस्त व्यक्ति यंत्र तंत्र मारे फिरते हैं। विश्वास के अभाव में उनकी सभी योग्यताऐं धूलि में मिल जाती हैं। सब लोग उससे बचते, दूर रहने एवं चगुल में न फँसने का प्रयत्न करते हैं। गहरा और सच्चा सहयोग उसके साथ स्थापित करने को कोई भी तैयार नहीं होता।

इस संसार में कोई भी मनुष्य अपने आप अकेला, अपने बलबूते पर किसी कहने लायक सफलता को प्राप्त नहीं कर सकता। इसके लिए दूसरों के सहयोग की आवश्यकता होती है। मनुष्य एक दूसरे के सहयोग से आगे बढ़ते, ऊँचे उठते और सफल होते हैं। परन्तु यह सहयोग उन्हें ही मिलता है जो इसके पात्र हैं। ठग, धोखेबाज, बेईमान, झूठे एवं खुदगर्ज आदमी ऐसे सहयोग का नहीं पासकते हैं। उनके विरोधी तथा दुश्मन तो अनेक होते हैं पर सच्चा मित्र एक भी नहीं होता। यही कारण है कि "चोरों के महल खड़े नहीं देखे जाते" की उक्ति सर्वत्र चरितार्थ होती देखी जाती हैं। अनेक बार वे बेईमानी से छोटी मोटी सफलताऐं प्राप्त कर लेते हैं पर उनकी कमाई सच्चे सहयोगियों के अभाव में यों ही नष्ट भ्रष्ट होजाती है और वे आगे नहीं बढ़ पाते।

चटोरे आदमी क्षणिक स्वाद के आकर्षण में आंख मूँदकर भक्ष अभक्ष खाते हैं। और कुछ ही समय बाद उस अन्धा धुन्धी के फल स्वरूप उत्पन्न हुए रोगों का कष्ट भुगतते हैं, इसी प्रकार दुःस्वभाव के व्यक्ति अनुचित अनीति को अपना कर अपनी तथाकथित चतुरता के बल पर कुछ लाभ उठा लेते है परन्तु वह लाभ अनेक गुना हानियों को उत्पन्न करता है, समाजमें उसकी प्रतिष्ठा नष्ट होजाती है, लोगों की निगाह में एक पतित नीच बन जाता है, जिसके साथ बुराई की है वे तो शत्रु होते ही हैं, साथ ही उस अनीति युक्त व्यवहार को बात सुनने वाले भी उसके शत्रु बन जाते हैं। अनेकानेक शत्रुओं से उसे नानाविधि हानियां पहुंचती हैं। आत्म ताड़ना, राज दंड एवं ईश्वरीय दंड इससे भी बढ़कर है। उनसे मिलने वाले दुखों की तुलना में, अनीति से प्राप्त हुआ लाभ धूलि के बराबर है। मिथ्याचारी अपने को चतुर कहते हैं पर यथार्थ में वे ही सबसे बड़े मूर्ख हैं।

हम गलती क्यों करते हैं ?

(ले०-श्री रामकिशनजी आर्य, गवालियर)

मनुष्य गलती पर गलती करता है। क्यों ? क्या इसलिए कि उसे इस बात का पता नहीं लगता कि वह गलती कर रहा है या नहा ? तो फिर किसी गलती को जब कोई मनुष्य बार बार दोहराता है तो इसका यही अर्थ होता है कि उस मनुष्य में नैतिक बल की न्यूनता है। मनुष्य के कोई गलती कर चुकने पर उसके मस्तिष्क में एक सूक्ष्म प्रतिक्रिया होती है। यही सूक्ष्म प्रतिक्रिया प्रकृति की ओर से मनुष्य के लिए आत्म सुधार का सन्देश-रूप होती है। जो मनुष्य गलती कर चुकने पर भी इस सन्देश को खुले कानों से सुन लेता है वह संभल जाता है और जो प्राणी इस संदेश को एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल देने का आदी हो जाता है वह निरन्तर अवनति के गर्त की ओर अग्रसर होता जाता है। आइए, जरा विचार करें कि यह प्रतिक्रिया किस रूप में हमारे सामने आती है। मान लो किसी व्यक्ति ने स्वाद के फेर में पड़कर एक रोटी भूख से अधिक खाली। जैसे ही वह खाना खाकर उठता है. उसे अपना पेट भारी मालूम होने लगता है। थोड़ी देर बाद डकारें भी आने लगती हैं। और वह आदमी यह मानने के लिए बाध्य हो जाता है कि इस समय चौके में उसने एक भूल की है जिसका परिणाम उसके सामने है ! स्वभावतः ही वह इस बात का निश्चय करता है कि अब हुआ सो हुआ आगे वह ऐसी गलती नहीं करेगा और आधी रोटी की भूख रखकर ही चौके से उठ आया करेगा। ऐसा निश्चय करते ही उसके हृदय पर से एक बोझ सा हट जाता है और वह कुछ शान्ति का अनुभव करता है। उसे अपनी डकारें कम होती मालूम पड़ती है। परन्तु अगले दिन जब वह भोजन करने बैठता है तो पहिले दिन वाले प्रलोभन उसे आ घेरते हैं। "आज आलू की सब्जी खूब स्वादिष्ट बनी है" "एक दो दिन अधिक खाने से कहां सेहत को नुकसान पहुंचता है," 'कल से नियम बना लूंगा" आदि भांति भांति के कु-तर्क उसके हृदय में उठते हैं और उसके नैतिक बल की दीवार को हिला देते हैं। मनुष्य फिर गिरता है और इसी प्रकार गिरता चला जाता है।

यह क्षणिक प्रतिक्रिया प्रत्येक छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी गलती के उपरान्त होती है। अनावश्यक वीर्य-पात से अधिक भयंकर भूल शायद ही कोई होगी। जब काम का वेग आता है तो मनुष्य अन्धा हो जाता है और भूल कर बैठता है। तदुपरान्त उसके मस्तिष्क की जो दशा होती है वह अनुभव करने के ही योग्य है। कहते हैं कि मनुष्य को वैराग्य दो ही जगह उत्पन्न होता है— एक तो किसी जलती हुई चिता को देखकर और दूसरे सम्भोग क्रिया के पश्चात्। सम्भोग क्रिया कर चुकने पर मनुष्य के मस्तिष्क पर धक्का सा लगता है और वह अनुभव करता है मानों किसी ने उसे आकाश से उठा कर पृथ्वी पर पटक दिया हो। इतने पर भी मनुष्य दूसरे दिन फिर उसी भूल को दुहराता है।

हम प्रतिदिन छोटी बड़ी असंख्य गलतियां करते हैं। यदि हम क्षणिक प्रतिक्रिया के रूप में आने वाले प्रकृति के सन्देश को ध्यान पूर्वक सुन सकें और उसे स्थायी रूप दे सकें, तो अवश्य ही हम भूलों से बच सकते हैं और अपने जीवन का निर्माण कर सकते हैं। क्रोध करना, समय बरबाद करना, किसी के दिल को मनसा, वाचा कर्मणा ठेस पहुँचाना, पर-निन्दा करना, झूठ बोलना, स्त्रियों को गिद्ध दृष्टि से देखना, आदि सैकड़ों ही भूलें हम दिन में करते होंगे। एक एक का सुधार करने से हो

मनुष्य एक दिन महात्मा बन जाता है। और अपना तथा दूसरों का सच्चा उपकार कर सकता है।

हम बहुत सी भूलें उस समय करते हैं जब हम अपने आपको अकेला पाते हैं। अतः परमपिता परमात्मा को सर्वव्यापी और सर्वत्र हाजिर मानने वाले मनुष्य के लिए गलती करने का बहुत कम अवसर रह जाता है। वह यही सोचता है कि परमात्मा मेरी भूलों को देखता है। वह हर समय मेरे साथ रहता है, अतः मुझे कोई गलती नहीं करनी चाहिये, इस तरह आस्तिक मनुष्य की गलतियां करने की बहुत कम सम्भावना है जबकि नास्तिक मनुष्य इस ओर से आजाद रहता है। इसका पूरा पूरा फल हर समय अपने माता-पिता, भाई, बहिन, स्त्री-बच्चे, मित्र अथवा अन्य कुटुम्बी जन किसी को साथ रख कर भी प्राप्त किया जा सकता है।

आज तक जो भी व्यक्ति महात्मा और महापुरुष बने हैं वे अपनी इन्हीं छोटी २ भूलों की ओर विशेष ध्यान देकर इस पद पर पहुँचे हैं। हम में से प्रत्येक व्यक्ति महात्मा बन सकता है, केवल थोड़ा सा सतर्क रहने की आवश्यकता है।

स्वप्नदोष कैसे रुके ?

(श्री स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजक)

जवान आदमी का यदि महीने में एक दो बार वीर्य गिरजाय तो अधिक घबड़ाने की बात नहीं उसे निम्नलिखित नियमों पर ध्यान रखना उचित है :—

१—रात्रि को देरीसे भोजन नहीं करना चाहिए यदि हो सके तो हलका भोजन करना चाहिये।

२—चाय काफी और तम्बाकू आदि नशीली चीज नहीं पीना चाहिये। सोने से पहिले गर्म दूध पीना भी वीर्य को गिरा देता है।

३—रोज अच्छी प्रकार ठण्डे पानी से स्नान करना चाहिये।

४—उपस्थेन्द्रिय का पर्दा पीछे कर उसे ठण्डे जल से नित्य धोना चाहिये।

५—सन्ध्या के समय यदि शौच जाने की आदत हो तो उससे कभी चूकना उचित नहीं। शौच न जाकर भोजन कर लेना बड़ी हानि करता है। रातको उस पाखाने की गर्मी से वीर्य गिर जाता है।

६—बहुत पेट भर किसी वस्तु को नहीं खाना चाहिये, रात्रि को खास कर पेटभर भोजन वर्जनीय है।

७—मांस भोजन सर्वथा त्याग देना चाहिये। और इस बात का ध्यान रखना उचित है कि कब्ज किसी प्रकार से न हो, नहीं तो शौच जाते समय वीर्य गिरेगा।

८—शान्त कमरे में बिस्तरे पर अकेले सोना उचित है।

९—रात्रि को पेशाब लगे तो फौरन उठकर करना उचित है। आलस्यवश उसे रोक रखने से भी वीर्यपात हो जाता है।

१०—सोने से पूर्व एक घंटा शुद्ध विचारों का मनन कीजिये। इससे बुरे स्वप्न रुक जाते हैं।

कहानी—

मांस खानेसे मनुष्य में पशुता

(लेखक—मदनमोहन गुगलानी शास्त्री)

पहली बैठक।

उस घने जंगल में, जहां जाने के विचार मात्रसे मनुष्य का हृदय कांप उठे, वह सभा हो रही थी।

सभापति भी था, मन्त्री भी और सभासद् भी। सभापति वनराज 'सिंह' एक ऊँची शिलापर विराज रहे थे। बाकी सब-के-सब नीचे ही थे—कँटीली जमीन पर। सभापति कह रहे थे —

"........मैं नहीं समझ सकता इसका कारण क्या है? मनुष्य—एक नन्हा-सा दुर्बल प्राणी—अपने से कई गुना अधिक बल शालियों पर, हम पशुओं पर, शासन करे, हुकुम चलाये, और जब जी चाहे हमें मार गिराये, यह शरम की बात है। मुझे दया आती है उन घोड़ों पर, जो मनुष्य को पीठ पर बिठाये लिये फिरते हैं, उन बैलों पर जो मनुष्य के लिए सैकड़ों मन बोझ खींचा करते हैं और उन हाथियों पर जो मनुष्य की एक लोहे के लकुटिया के डर से बिल्ली बने रहते हैं। क्या है मनुष्य को हक कि वह गाय, भैंस और बकरियों के बच्चों के मुँह से छीन कर, उनका दूध दूहा करे? क्या मनुष्य में शक्ति इन सबसे अधिक है? यदि नहीं, तो हम उससे दबें क्यों? आज परस्पर वैरभाव छोड़कर आप सब यहां एकत्रित हैं। क्या कोई ऐसा उपाय नहीं सोचा जा सकता जिससे मनुष्य के हाथों छुटकारा पाया जा सके, और हम फिरसे स्वतन्त्रता पूर्वक जंगलों व पहाड़ों में घूम सकें?"

वह चुप हो गये।

मन्त्री 'शृगाल' देव विनीत भाव से बोले—

'महाराज आपके प्रतापसे सब कुछ सम्भव है। पर, क्षमा करें, मनुष्यको नीचा दिखा सकना आसान काम नहीं। यह मनुष्यका बल नहीं जो घोड़ों, बैलों व हाथियों तक को दबाये हुए है, एवं वनराज पर वार करनेमें भी नहीं हिचकता। यह तो है मनुष्यकी बुद्धि। इसी बुद्धि के सहारे वह सीना अकड़ा कर चला करता है। जब तक मनुष्य में बुद्धि है, वह काबू में नहीं आ सकता। मनुष्य को नीचा दिखाने के लिये पहले उसकी बुद्धिका नाश आवश्यक है।"

"हमें तुम्हारी बात पसंद है", सभापति बोले, "तुमने ठीक ही कहा। हमें आज ऐसे उपाय सोचने होंगे जिनसे मनुष्यकी बुद्धि नष्ट की जा सके। इसमें यदि हम सफल हों तो पौबारह हैं। मित्रो, क्या तुम इस बारे में कोई राय दे सकते हो?"

सब चुप रहे। दो-तीन मिनट कोई भी बोला नहीं। अन्त में झिझकते हुए 'ऋषभ' देव खड़े हुए।

"हजूर", वह बोले, "मेरी समझमें तो मनुष्य की बुद्धि आसानीसे नष्ट की जा सकती है। यदि मनुष्य में पर्याप्त पशुता भरदी जाय, तो उसकी बुद्धि अवश्य ही नष्ट होती जायगी। इसके लिये हमें बलियां देनी होंगी। हमें स्वयं मनुष्य के आहार का बड़े-से-बड़ा अंग बन जाना होगा। तभी सफलता सम्भव है। कई-कई पशु खा चुकनेवाले मनुष्य में उन सब पशुओं की पशुता का संचार क्योंकर न होगा? मनुष्य एक बड़ा पशु बन जायगा और पशुताके ऐसे भयंकर कार्य करेगा, जिन्हें देखकर पशु भी दंग हुए बिना न रह सकेंगे। और......"

"ठीक है, ठीक है", सभापति बीच में ही बोल पड़े, "तुम्हारी ही बात ठीक है। मनुष्य पशु-मांस का आहार करता है, पर थोड़ा। अब यदि पशु उसकी रुचि इस ओर बढ़ा दें, उसका जीवन केवल पशु-मांस-पर ही निर्भर बना दें, तो मनुष्य धीरे-धीरे मनुष्यता छोड़ पशुता की ओर बढ़ता जायगा। इसके लिये जाओ, जैसे भी हो, मनुष्यको तरह-तरह के प्रलोभन दो। अपनी जातिके लिये जानकी परवा मत करो। भेड़ें, हरिण, घोड़े, गौवें, बैल सभी छोटे से लेकर बड़े तक, मनुष्य का आहार बनने का प्रयत्न करो, अपनी-अपनी पशुता पर्याप्तरूपमें उसमें भर दो। भगवान् पशुपति हमारी सहायता करेंगे। क्या आप सब तैयार हैं?"

"तन-मनसे, तन-मनसे," चारों ओरसे आवाज आयी। सभा विसर्जित कर दी गयी।

दूसरी बैठक।

बहुत समय बाद फिर से वहीं सभा हुई। सभापति नये थे, मन्त्री नये थे, सभासद् नये थे। पर अपने पुरखाओं के चलाये हुए कार्यको वे भूले थे। मन्त्री कार्य-विवरण सुना रहे थे —

"हजारों, लाखों ने जानकी परवा नहीं की। आगकी भीषण लपटों में जलाये जाने के कष्ट को नहीं सोचा। छोटे–बड़े हर प्रकार के पशुओं ने भाग लिया है। पक्षियों ने भी बड़ी सहायता की। आशा से अधिक उत्साह दिखाया जा रहा है इस काम में सफलता भी हमें आशा से अधिक मिल रही है। मनुष्य दिन-प्रति दिन बुद्धि खो रहा है। और तो और, वह अपने आपको भी एक पशु (डार्विन की की थ्योरी के अनुसार) मानने लगा है। यह इस बात का प्रमाण है कि पशुता उसमें घर करती जा रही है। शेर शेर के, बैल बैल के, घोड़ा घोड़े के खून का प्यासा नहीं। पर मनुष्य मनुष्य के खून का प्यासा बन चुका है। पशुता उसमें वह रंग दिखा रही है कि आकाशके देवताभी विस्मित होते होंगे।"

"सन्तोषजनक!" सभापति बोले "यह सब कुछ सन्तोषजनक है। पर हमें अभी यत्न छोड़ नहीं देना चाहिये। इससे वह फिर होश में आ जायगा। बुद्धि उसकी ठिकाने आ लगेगी काम जारी रक्खो, और जारी रक्खो तबतक जब तक मनुष्य का नाम तक बाकी है। मनुष्य की सत्ता ही मिट जाने दो। सैकड़ो पशु खाने वाला मनुष्य सैकड़ों पशुओं जैसे कार्य कर रहा है तो हजारों पशु खा चुकने पर वह क्या कुछ न कर गुजरेगा। जब उसकी रग-रग में हजारों पशुओं का खून दौड़ेगा तो वह अपने निकट बन्धुओं के खून से प्यास बुझाने में न हिचकेगा। इस द्वन्द्व को पैदा हो जाने दो। मनुष्यों को आपस में ही लड़ मर जाने दो। लगे रहो, पशुपति हमारी रक्षा करें, लगे रहो।"

"हम निरन्तर जानकर खेलते रहेंगे।" सभीने कहा। सभापति चल दिये। सभी उठ उठकर चल दिये

तीसरी बैठक।

और भी सदियाँ बीत गयीं। स्थान वही रहा, सभापति बदल गये, सभासद् बदल गये। सभा फिर से हुई। सभापति बोल रहे थे—

"आज सौभाग्य का दिन है। सदियों पूर्व अपने पुरखाओं द्वारा चलाये गये कार्य की सफलता को हम अब निकटतम ही देख रहे हैं। हमारा सबसे बड़ा शत्रु आज गले पर स्वय छुरी चला रहा है। खूनकी प्यास मनुष्य में व्यक्तिगत नहीं रही। जाति-योंकी जातियां, देशों के देश, इस खूनकी प्यास से आकुल हो उठे है। वह उस कलह की आग में जल रहे है जो उसकी भस्म तकको जला देगी। मनुष्यों में वह युद्ध प्रारम्भ हो चुका है जिसे उन्हीं की भाषा में 'विश्व-युद्ध' कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य के रहने का कोई स्थान ऐसा नहीं जो इस युद्धकी लपेट में बच रहा हो। हर नया सूर्य लाखों नयी मनुष्य की लाशों को देखता है। मनुष्य का सारा ऐश्वर्य शून्यता मे लीन हो रहा है। इससे अधिक सुखद समाचार और हो ही क्या सकता है? पर अभी वह दिन आना है जब पशुमांसाहारी मनुष्य नरमांस से भूख मिटायेगा। माँ बच्चों को बड़े छोटों को खा जायँगे मारकर। मनुष्यता का सारा दम्भ मिट्टी में मिल जायगा। उस दिनको आने दो, हां आने दो। अपना यत्न मत छोड़ो। भगवान् पशुपति हमारे मनोरथ पूरे करें। हां अब भी कहीं मनुष्य चेत गये और उन्होंने मांस खाना छोड़ दिया तो हमारी कामना सफल न होगी। अस्तु

"भगवान् पशुपति हमारे मनोरथ पूरे करें," यही सबने दोहराया। सभा एक बार फिर विसर्जित हुई।

—'कल्याण'

हँसने से स्वस्थता की प्राप्ति।

स्वास्थ्य जगत में यह उक्ति बहुत ही महत्व पूर्ण है कि—"हँसो और मोटे बनो।" हम देखते हैं कि हँसमुख स्वभाव वाले मनुष्य प्रायः मोटे होते हैं। वे जरा ही बात पर हँस पड़ते हैं। खिल खिलाकर हँसने से पाचन क्रिया पर आश्चर्य-जनक प्रभाव पड़ता है। भूख लगती है और अन्न का परिपाक ठीक प्रकार हो जाता है। समस्त शरीर के नाडी तन्तुओं और स्नायुओं पर हँसने को अच्छी प्रतिक्रिया होती है। मुँह, गरदन, छाती और उदर के बहुत से उपयोगी स्नायुओं की आवश्यक हो जाती है जिससे भीतरी अवयव स्फुलिंगत और सुदृढ़ होते हैं। मांस पेशियां और ज्ञान तन्तु चैतन्य होकर रक्त संचालन का मार्ग सुगम कर देते हैं, फल स्वरूप त्वचा पर चमक आ जाती है और तेज तथा लालिमा की शरीर में वृद्धि होने लगती है।

जोर के साथ हँसने से फेफड़ों में एक प्रकार का तूफान आता है जिससे उनमें भरी हुई गंदी हवा खुल कर साफ हो जाती है। क्षय आदि को कीटाणु जो किसी कोने में छिपे पड़े रहते है, इस तूफान की हलचल में अपने स्थान से हट कर सांस के साथ बाहर निकल जाते हैं। साथ ही फेफड़ों का अच्छा व्यायाम हो जाता है। उनके मजबूत होने से अनेक रोगों की जड़ कट जाती है।

कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि हँसोड स्वभाव रखने के कारण हमारी गंभीरता नष्ट हो जायगी और लोग हमें हलका आदमी समझेंगे। परन्तु यह एक मिथ्या भ्रम है। उदास, चिड़चिड़े मुर्दना का सा मुँह लेकर बैठे हुए व्यक्ति दूसरों पर कोई अच्छा असर नहीं डालते। उदास और गुम सुम अकड़े हुए बैठे रहने से रस और रक्त बनने की क्रिया मंद हो जाती है और कलेजे में विषैले पदार्थ जमा होने लगते हैं, तिल्ली और कलेजे का व्यायाम करने की एक मात्र क्रिया हँसना ही है। जिन्हें तिल्ली या यकृति में खराबी के रोग हों वे कुछ दिनों दिन में दो तीन बार खिलखिला कर हँस लिया करें तो उन्हें बिना एक पैसा खर्च किये उन महाव्याधियों से छुटकारा मिल सकता है।

आनन्दमय जीवन के अनेक साधनों में हँसने का स्वभाव अपना महत्व पूर्ण स्थान रखता है। बड़ी बड़ी विपत्तियों को हँसते हँसते मनुष्य सहज ही पार कर सकता है, जब कि गंभीर मुद्रा बनाये बैठे रहने वाला भावुक व्यक्ति, छोटी मोटी आपत्तियों से ही किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है। हँसने की आदत प्रपंची, कपटी, स्वार्थी, और कंजूस मनुष्यों को प्राप्त नहीं हो सकती जीवन को हँसी खेल समझने वाले मस्त तबियत के व्यक्ति सदा प्रसन्न रहते हैं और उन के होठों पर मधुर मुसकान अठखेलियां करती रहती हैं। जिन्हें हँसना प्रिय हो उन्हें प्रसन्न मुख और विनोदी स्वभाव वाले साथियों का सहचर्य प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। जिन्हें सौभाग्य वश ऐसे मित्र प्राप्त हैं उन्हें एक स्वर्णिम अवसर प्राप्त है। इसके विपरीत जो लोग भय, आतंक, प्रतिबंध, ताड़ना के कठोर घेरे में कैद हैं जिन्हें स्वतंत्रता पूर्वक हँसने की सुविधा नहीं, उन्हें एक प्रकार दुर्भाग्य ग्रस्त कैदी ही समझना चाहिए।

मुर्दा दिल, दरिद्र और शोक ग्रस्त लोगों को प्रायः सच्ची हँसी नहीं आती इसलिए वे प्रायः दुर्बल पीतवर्ण और निस्तेज देखे जाते हैं। मुस्कान में एक ऐसा आकर्षण है जो दूसरों के हृदय को जीतने में जादू का काम करता है। इतना ही नहीं, इस दैवी आकर्षण से सुख सौभाग्य और आरोग्य भी खिंच कर उस व्यक्त के पास चले आते हैं। हमें नित्य जी खोल कर हँसना चाहिए इसका स्वास्थ्य पर बड़ा अच्छा असर होता है।

कवि की-वाणी से

(लेखक—अविज्ञात)

अधिक अनसुनी कर न सकूँगा दर्दभरी चीत्कार सुकेशी !
भूख भूख रोटी रोटी की व्यापक करुण पुकार सुकेशी ॥
हिल उट्ठे हैं विन्ध्य हिमाचल सुन यह हाहाकार सुकेशी ।
बांध सकेगा कब तक कवि करुणा का पारावार सुकेशी ॥

मैंने कब चाहा परियों का साथ छोड़ भूतल पर जाऊँ ।
मैंने कब चाहा सुमनों का प्यार छोड़ कांटों पर धाऊँ ॥
मैंने प्रणय छोड़ कब चाहा सजनि प्रलय के गाने गाऊँ ।
मैंने कब चाहा मधुमय प्याली ढुलका विष पीने जाऊँ ॥

किन्तु सह्य अब हो न सकेगा कानों के परदे फटते हैं ।
वह देखो मानव के खाने को मानव के सर कटते हैं ॥
महलों को रोशन करने को कुटियों को आहुति दी जाती ।
वैभव का जी बहलाने को श्रम-शोणित-हाला पी जाती ॥

श्रम का स्वेद बहा कर जो धरती को सींच अन्न उपजाता ।
वह रोटी के बिना तड़फता तिलतिल जलकर प्राण गमाता ॥
वस्त्र नहीं, जिससे बेचारी अबलाऐं लज्जा ढक पावें ।
वस्त्र नहीं जिससे रोगी, सर्दी गर्मी से प्राण बचावें ॥

दूध नहीं जिसके बिन दीनों के बच्चे दम तोड़ रहे हैं ।
दूध नहीं जिसके बिन नन्हे शिशु जग से मुँह मोड़ रहे हैं ॥
उसी दूध से मन्दिर और मठों की नाली धोई जातीं ।
"दूध कहां से पाऊँ लालन ?" शिशु की दीना माँ चिल्लाती ॥

आओ सजनि, चलें हम भू पर, रख दें अपनी स्वर्गिय वीणा ।
मुझको भूखे कृषक बुलाते, तुम्हें मजूरिन वस्त्र विहीना ॥
चलो, अतल पाताल धरातल जहाँ कहीं भी हम पा जायें ।
रोटी भूखों को, नंगों को कपड़ा, शिशुओं का पय लायें ॥